Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal Impact Factor 4.94 ISSN No. 2456-1665

आदिवासी जीवनसत्य की साहित्यिक वैचारिकी

प्रा.डॉ. रमेश माणिकराव शिंदे
अध्यक्ष तथा सहयोगी प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय,
अंबाजोगाई, जि. बीड.
rameshmshinde@gmail.com

भारतीय संस्कृति को संसार की सर्वाधिक प्राचीन होने का गौरव प्रदान किया किया जाता है। आदिवासी देश के मूलनिवासी हैं। उन्हें समाज की मुख्य धारा में स्थान प्राप्त होना आवश्यकता थी, किन्तु वे हाशिए पर रहें। आदिवासी वह समाज है, जो समकालीन सामाजिक विकास से काफी दूर रहा है। जिनका मुख्य धारा से कोई भी सरोकार नहीं रहा। दलित साहित्य की व्यापक स्वीकार्यता तथा सार्थकता के बाद नारी चेतना और आदिवासी चेतना से संपन्न साहित्य पुरे विश्व में अपनी उपस्थिति दर्ज कर रहा है। हमें आदिवासी जीवन की पारंपारिकता के समाज मूल्य, सभ्यता, संस्कृति और भाषा के स्वरूप को समझते हुए समकालीन समाज की यथार्थता से उजागर होता हुआ साहित्यिक रूप आत्मसात करना चाहिए।

'आदिवासी' शब्द का अर्थ मूलनिवासी स्वीकृत किया जा चूका है। संविधान में उन्हें अनुसूचित जनजाति कहकर संबोधित किया गया । भारतीय आदिवासी मुख रूप से भारत के वन में निवास करनेवाले मूलतः किसानी सभ्यता के मूलाधार स्वीकार किये जाते हैं। भारत में अनुसूचित जनजाति की संख्या कुल जनसंख्या के आठ प्रतिशत रही है। सन २००१ की जनगणना के अनुसार उनकी संख्या लगभग ८२० लाख के आसपास थी। आदिवसियों को मुलत: दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। पहिला वर्ग है, सीमावर्ती क्षेत्रीय जनजातियां। जिनमें उत्तर पूर्वी सीमांत राज्यों के निवासियों को समायोजित किया जाता है। अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, मणिपुर, मिज़ोरम, नागालैंड और त्रिपुरा आदि राज्य सीमा क्षेत्रीय राज्य हैं। दूसरा भाग है, गैर सीमा क्षेत्रीय जनजातियां, इस वर्ग में मध्यप्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान , बिहार, गुजरात, दादर नगर, हवेली, लक्षद्वीप टापू आदि भूभाग का नाम प्रमुख है।

आदिवासियों की सवैधानिक स्थिति की अगर बात की जाएं, तो संविधान की धारा ३६६(२५) ने अनुसूचित जनजातियों को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि वे जनजातियाँ या जनजाति समुदाय या ऐसी जनजाति या जनजातियां समुदायों के हिस्से या समूह, जिन्हें ३४२ की धारा तहत संविधान के प्रयोजन हेतु अनुसूचित जनजातियां माना जाता है। राष्ट्रपति द्वारा भारत के संविधानिक प्रावधान के अनुसार २१२ जनजातियों को अनुसूचित जनजातियां घोषित किया गया, किसी समूह की पृथकता, पिछड़ापन और सांस्कृतिक विशिष्टता ऐसी प्रमुख विशेषताएँ हैं, जो राज्य को किसी समुदाय को अनुसूची में सम्मिलित करने का दिशा निर्देशन करती है।

आदिवासी लोंगो के पास हमेशा से ही जंगल और जमीन दोनों रहे हैं। जल,जीवन है। जिससे प्रत्येक जीव का निर्माण हुआ। आदिवासी की वास्तविक पुंजी जल, जमीन और जंगल है। उन्होंने समाज में रहकर

अपनी संस्कृति और अस्तित्व को अमर बनाये रखा। उनकी जीवन शैली, भाषा, विरासत, शिक्षा आदि ही उनकी पहचान के जीवित रखने में सहायक रही। भारत की कृषि और वनों के उत्पादों द्वारा वे प्राकृतिक संसाधनों के सहयोगिता के रूप में अपने जीवन यापन की पद्धति को इन सभी आदिवासी लोगों ने युगों-युगों से संघटन के रूप में संजोकर रखा है। मगर आज का समय उनके अपनी संस्कृति और सामाजिक संरचना के साथ-साथ अपनी अस्मिता पर खतरा दिखाई देने लगा है। भूमंडलीकरण का विनाशक रुप उनकी अपनी स्वातंत्रता, आत्मसम्मान पर खतरा दिखाई देने लगा तो वे हीनबोध से ग्रस्त हुए। यह वर्तमान में नहीं बल्कि ब्रिटिश काल से शुरू होता दिखाई देता है।

ब्रिटिश शासन के दौर में भारत के विभिन्न क्षेत्रो में अनेक जनजातियाँ अपने ऊपर होते हुए अन्याय के प्रति सजग होकर संघर्ष करती देखी गयी हे। अधिकांश जनजातियाँ जंगल में रहती थी, जिन पर लोक तथाकथित कारणों से निर्भर है। जीवनयापन के अनेक क्षेत्रों में से यह एक प्रमुख स्त्रोत है। वन्य उत्पादों को प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कुछ नियम बनाये और लकड़ी के ठेकेदारों और व्यापारियों को जंगल कटाने के अधिकार दिए। इन नियमों ने न केवल जनजातियों के वन्य उत्पादों संबंधी अधिकारों में कटौती की अपितु वन विभाग की नौकरशाही ने इन लोगों को परेशान करते हुए जीवन आवश्यक वस्तुओं की लालच दिखाकर उत्पीड़न भी किया और उन्हें उजाड़ भी दिया। परिणाम स्वरुप जनजातीय लोगों ने इसका प्रतिकार किया।

अंग्रेज काल में लगभग सभी जनजातीय लोग और विशेषरूप से उनके मुखिया को नए शासन में अपनी सत्ता और संसाधनों को छीन जाने का अहसास हुआ। संथालों का आंदोलन, बिरसा मुंडा आंदोलन, छोटा नागपुर के कोल लोगों की बगावत, आंध्र-प्रदेश के गुडेम रम्पाओं का विद्रोह, भिल्लों का विद्रोह ये कुछ आंदलन हैं। जिन्हें भारतीय आदिवासी संघर्ष की कथा तथा इतिहास में याद किया जाता है। "ऐंसे आंदोलनों का उद्देश्य उनके राज्य की पुनः स्थापना करना और जनजातीय संघटन और संस्कृति को बनाये रखना था. छोटा नागपुर में बिरसा आंदोलन का लक्ष्य नस्लीय दुश्मनो (डाकू लोग), युरोपीय मिश्निरियों और अफसरों तथा देशी ईसाईयों का काम ख़त्म करना था। मुंडा लोग उनके खोये हुए राज को पुनः प्राप्त कर लेंगे। उनके पास पर्याप्त खाद्य सामग्री होगी, कोई अकाल नहीं होंगे, सभी व्यक्ति एक साथ प्रेम से रहेंगे। "१

भारतीय आजादी आंदोलन से जिस प्रकार से सामान्य व्यक्ति ने अपने सपने संजू ने के लिए योगदान दिया था ठीक उसी के अनुपात में आदिवासियों की योगदान को भी देखा जाता है।स्वाधीनता के बाद भी भूमि अलगाव, सूदखोरी, बगावत श्रम, मजदूरी, भूमि हड़पना आदि जनजातीय आंदोलन के प्रमुख मुद्दे बने रहें किंतु उनका उजड़ना तय था। अपनी माटी के प्रति अंतरिक लगाओ पूर्ण भावना बार-बार उन्हें बेचैन करती रही। इसी बेचैनी ने आदिवासी साहित्य का निर्माण किया।

आदिवासी और शासनकर्ताओं के बीच विरोध की भावना उत्पन्न होने के परिणाम स्वरुप माओवाद की समस्याएं बड़ा घेरा कर लिया है। नक्सलवाद की समस्या ने देश को बुरी तरह से घेर रखा है। यह बात कहने का प्रमुख कारण यह है कि आदिवासियों का एक प्रमुख मुद्दा जमीन और जंगल की मजदूरी का रहा है। बड़े पैमाने पर वनभूमि पर आदिवासियों का करवा करवा कर और वन विभाग के उत्पीड़न से मुक्ति दिलाकर माओवादियों

ने अपना ठोस जनधार बनाया है। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के पूर्व आयुक्त डॉ. बी. डी. शर्मा का इस सन्दर्भ में मंतव्य दृष्टव्य है -"हकीकत है कि आदिवासी इलाके में हर जगह पर कुछ खनिज सम्पदा अवश्य है, तो अब सरकार इसमें से कुछ टाटा को दे रही है, तो कुछ वेदांत को तो कुछ किसी को।आदिवासी यही पूछ रहे है कि ५० वर्ष बाद हम लोग कहा रहेंगे यह बता दीजिए? जब हवा हमारी है, खेत हमारे हैं।पानी, खनिज सब प्रकृति हमारी है। तो नोटों से खरीदने वाले सेठों की यह कैसे हो गयी? यही सवाल आदिवासी पूछ रहे हैं। इसलिए हम विकास के विरोध की बात नहीं कर रहे हैं। यह जीने के हक़ की लड़ाई है।"२ आधुनिकीकरण से एक और नई समाज रचना का निर्माण हुआ। जिसे मुख्यधारा के समाज को सामने रखते हुए सरकार भी अपनी दिशा निश्चित करती रहे। हंसी की अनेक जनजातियां सरकार की निगाह से उपेक्षित रही। समाज के सभी वर्गों को विकास के प्रति समान अन्याय नहीं मिल सका। इसी में उत्तर आधुनिक दौर से प्रभावित वैश्वीकरण विकास के नाम नई व्यवस्था का निर्माण कर रही है जिसे भारत सरकार ने वैश्विक प्रभाव से स्वीकारा है। किंतु हंसी की उपेक्षित जनजातियों पर इन सभी का बुरा प्रभाव हो रहा है। वैश्वीकरण इसी निगाह से विकास के नाम विनाशकारी नव व्यवस्था बना रही है।

आदिवासियों के साथ हुए और हो रहे अन्याय के कारण ही माओवाद पनप रहा है। परिणाम स्वरुप माओवादी हिंसा के लिए अत्यधिक आलोचक सरकार को जिम्मेदार मानते हैं।

आदिवासी जनजातीय समाज के अंदर हम आदिवासी लोगों की भाषाई अस्मिता के आंदोलन को भी देख सकते हैं । गणेश देवी के अनुसार – नौं करोड़ आदिवासी छह करोड़ घुमंतू, यानी करीब 14- 15 करोड़ आदिवासी लोग आज विकास के नाम पर विस्थापित किए जा रहे हैं । उनमें सब कुछ हाइजैक कर लिया है । सरकार के पास इनकी भाषाओं के संरक्षण हेतु कोई ठोस योजना नहीं है ।"३

हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा को छोडकर लगभग सभी विधाओं में आदिवासी साहित्य की महत्वपूर्ण स योजना की जा रहा है। उसपर गंभीर चर्चा कर आदिवासियों की मूल संवेदना पाठक तक पहुँचाने का प्रयास बडी मात्रा में हो रहा है । जैसे की हमें पता है कि आदिवासी समुहों में रहना पसंद करते हैं। उसको अपनी असली ताकत मानते हैं। यही कारण है कि आत्मकथात्मक आदिवासी साहित्य नहीं के बराबर है । " आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केंद्रीय स्थान नहीं बना सका ,क्योंकि स्वंय आदिवासी समाज आत्म से अधिक समूह में विश्वास करता है,अधिकतर आदिवासी समूदायों में काफी बाद तक निजी और निजता की धारणाएँ घर नहीं कर पाई । परंपरा , संस्कृति , इतिहास को लेकर शोषण और उसका प्रतिरोध – सब कुछ सामुदायिकता के है । समूह की बात आत्मकथा में नहीं , जनकविता में ज्यादा अच्छे से व्यक्त हो सकती है ।"४

हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं में आदिवासियों की परेशानियां, समस्याओं को सूक्ष्मता से प्रस्तुत करने का श्रेय हिंदी साहित्यकारों को जाता है । साहित्यकारों ने उपनिवेश काल में साम्राज्यवाद और सामंतवाद के गठजोड़ से पैदा हुई आदिवासियों की समस्याएँ और आजादी के बाद भारत की आदिवासी नीतियों और उदारवाद के बाद की समस्याओं को प्रकाशित करने का प्रयास किया है । राजेंद्र अवस्थी द्वारा लिखित 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंड जनजाति की संस्कृति तथा समस्याओं को रेखांकित किया है । गोंड जनजातियों की भाषा,

जीवन शैली, वेशभूषा, आभूषण की भिन्नता का सूक्ष्मता से उपन्यास में वर्गिकृत किया गया साहित्यिक रूप है। सुरेशचंद्र श्रीवास्तव कृत बनवरीं उपन्यास में परहिया आदिवासियों का चित्रण हम पढ़ सकते है । अशिक्षा के चलते अधिकारियों के शोषण के शिकार होते आदिवासियों की व्यथा पाठक को झकझोर देती है। मैत्रयी पुष्पा कृत अल्मा कबुतरी उपन्यास में बुंदेल खंडी एवं ब्रज के आदिवासियों का जीवन वर्णन किया गया है, अजनबीपन, शोषण, वेदना,लाचारी के भाव प्रस्तुत उपन्यास चरित्रों में देखे जाते हैं। संजीव जी रचित 'धार' उपन्यास में पुलिस के द्वारा आतंक , अन्याय और भ्रष्टाचार से परेशान आदिवासी को उजागर किया गया है । संजीव जी का ही दूसरा उपन्यास 'पाँव तले की दूब' में झारखंड के मेडिया गांव तथा बाँधकूड़ी गाँव का चित्रण करते हुए आदिवासियों के जीवन में घटित घटनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है । आदम गोंडवी का ग़ज़ल संग्रह 'समय में से मुठभेड' में आदिवासियों के मन का विद्रोह हमें लक्षित होता है। आदिवासी महिलाओं की विद्रोह भावना निर्मला पूतूल का काव्यसंग्रह 'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द' में मुखर होती है ।

अतः स्पष्ट है कि हजारों सालों से प्रताड़ित आदिवासी अपने न्याय के लिए संघर्ष कर रहे हैं । उनके विद्रोह को आतंक का नाम देकर उन्हें और हीनता बोध से प्रताड़ित किया गया। हिंदी साहित्यकारों ने आदिवासी जीवन को केंद्र में रखकर उनके धर्म , आस्था, दर्शन, वेशभूषा, भाषा जैसी संस्कृतियों की महता देकर उन्हें मुख्यधारा में लाने का सफल प्रयास किया है और करते जा रहे हैं।

संदर्भ संकेत : -

1. शाह, घनश्याम.' भारत में सामाजिक आंदोलन' (संबंधित साहित्य की एक समीक्षा) अनुवादक हरिकृष्ण रावत. जयपूर: रावत पब्लिकेशन ,20
2. देवी महाश्वेता, त्रिपाठी अरुण कुमार. 'माओवादी या आदिवासी' महाश्वेता देवी , अरुण कुमार त्रिपाठी द्वारा संपादित. नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन,2011
3. केंद्रीय हिंदी निदेशालय भारत सरकार. 'भाषा' वर्ष 61, अंक 1(2022)
4. डॉ.शेख सुरैया . 'इक्कीसवी सदी का कथा साहित्य' डॉ.सुरेय्या शेख द्वारा संपादित. कानपुर : शुभम् पब्लिकेशन, 2014